श्रावण कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक - ०४-०९-१९६४
श्रावकाचार, गाथा - ७ से १४, प्रवचन-१२

यह पद्मनन्दि पंचविंशति का छठवाँ अधिकार है। श्रावकाचार। अर्थात् उपासक संस्कार। धर्मी जीव को... पहले आ गयी यह बात कि आत्मा परम पवित्र शुद्ध ज्ञान आनन्दघन है। ऐसी अन्तर पहले दृष्टि-सम्यग्दर्शन होना चाहिए। जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ क्या है ? चारित्र अर्थात् स्थिर होना। चारित्र अर्थात् कि रमना, स्थिर होना, टिकना। परन्तु वह चीज़ क्या है कि जिसमें टिकने से चारित्र होता है ? अर्थात् प्रथम में प्रथम आत्मा अत्यन्त शुद्ध ज्ञायक का पिण्ड पवित्र है, उसे राग, कर्म, शरीर को लेप नहीं है। समझ में आया ? ऐसी अन्तर में सम्यक् दृष्टि हुए बिना पंचम गुणस्थान के योग्य स्थिरता और उसे श्रावक आदि के जो व्रतों के विकल्प यथार्थरूप से होते नहीं। समझ में आया ? यह तो पहले ही आ गया था। सब जगह लिखा है।

सम्यग्दृग्बोधचारित्रत्रितयं धर्म उच्यते।
मुक्तेः पन्थाः स एव स्यात् प्रमाणपरिनिष्ठितः।।२।।

यहाँ से ही शुरु किया था। पहले ही आत्मा अत्यन्त निर्विकल्प अर्थात् अखण्ड आनन्द और शुद्ध पूर्ण तत्त्व ध्रुव है। ऐसी अन्दर में दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन—प्रथम धर्मदशा होती है। पश्चात् उसे पंचम गुणस्थान जो श्रावक का कहलाता है, उसमें स्वरूप में विशेष एकाग्रता, स्वचैतन्यस्वभाव का आश्रय चौथे गुणस्थान में लिया था, उसकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान में स्वस्वभाव का आश्रय चौथे से उग्ररूप आश्रय लिया है। इसलिए उसे पंचम गुणस्थान के योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति—स्वरूप की स्थिरता प्रगट हुई होती है। समझ में आया ? उसे उसकी भूमिका में बारह व्रतादि विकल्प होते हैं। उन्हें करना, ऐसे व्रत पालना, ऐसा यहाँ अधिकार चरणानुयोग की पद्धति के कथन से चलता है। समझ में आया ? वहाँ छह गाथा हो गयी।

अब सातवीं। षट् आवश्यक कर्म। सम्यक् भानसहित धर्मात्मा को—श्रावक को हमेशा षट् कार्य होते हैं। षट् कर्म—छह प्रकार के शुभभाव। समझ में आया ? देखो!

गाथा ७

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।।७।।

अर्थ : जिनेन्द्रदेव की पूजा और निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा तथा स्वाध्याय और संयम तथा योग्यतानुसार तप और दान ये छह(षट्) कर्म श्रावकों को प्रतिदिन करने योग्य हैं ।।७ ।।

गाथा – ७ पर प्रवचन

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।।७।।

पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं कि श्रावक को षट्कर्म के कार्य प्रतिदिन होते हैं। कौन से (षट्कर्म) ? जिनेन्द्रदेव की पूजा। समझ में आया ? ऊपर आ गया था, उस छठी गाथा में। जिनमन्दिर बना हुआ होता है। श्रावक के गाँव में जिनमन्दिर होता है। मुनि की भी आने की स्थिति होती है, उन्हें दान देने की विधि भी होती है और ऐसे मन्दिर में मुनि का आना हो, इसलिए शास्त्र श्रवण का योग भी वहाँ श्रावक को होता है। ऐसा कहकर यहाँ लिया कि देवपूजा। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि श्रावक है, उसके गाँव में मन्दिर होता है। यह अनादि की रीति है। सेठी ! इससे वह प्रतिदिन भगवान की पूजा करे। संसार के काम करता है या नहीं पाप के ? ये पाप के भाव भी उसे आते हैं, इसलिए उसे ऐसे पुण्य कार्य के—षट्कर्म के भाव आये बिना नहीं रहते। वह है तो शुभभाव। समझ में आया ? यह तो चरणानुयोग की (कथन) पद्धति है। देवपूजा '**षट्कर्माणि दिने दिने**' करे। करनेयोग्य है, ऐसा कहे। समझ में आया ? जिनेन्द्रदेव की पूजा प्रतिदिन होती है। यहाँ पूजा शब्द प्रयोग किया है, हों ! दर्शन करके ऐसे चले जाना, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : खोटी होना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी होना पड़े। खोटी होना पड़े न? धन्धा खोटी हो। श्रावक है, उसे तो इस अन्तर्दृष्टि में... पहले ही आगे आयेगा, पहले ही सवेरा हो और भगवान के दर्शन (करे)। आयेगा, देखो! १६वीं गाथा में। **'प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम्'** १६वीं गाथा में आयेगा। समझ में आया?

देखो! यह अनादि का सनातन वीतराग मार्ग। जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जाना हुआ, देखा हुआ, कहा हुआ, रहा हुआ। इस प्रकार से मार्ग रहा हुआ है। उसकी यहाँ व्याख्या करते हैं कि श्रावक है, वह हमेशा भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करे। समझ में आया? घर में स्त्री-पुत्र की प्रतिदिन पूजा करता है या नहीं? पूजा अर्थात् बहुमान। और देव की पूजा तो होती है। श्रावक है, वह घर में स्त्री-पुत्र को सम्हालता है या नहीं? दूध पिलावे, ऐसा हो। तो कहते हैं, देव की पूजा श्रावक को हमेशा होती है। वह (स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धी) पाप भाव है। होवे भले, परन्तु उसे ऐसा शुभभाव प्रतिदिन दिन-दिन होता है। उसे करनेयोग्य है, ऐसा व्यवहारनय के कथन में आता है। वास्तव में तो उस काल में वह विकल्प उस प्रकार का आता है, इसलिए पूजा के योग्य क्रिया में उसका लक्ष्य जाता है। कहो, समझ में आया?

साधारण जनता उसके घर आवे तो उसका आदर करता है या नहीं? कोई सेठिया गृहस्थ (होवे)। यह तो तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र भगवान, इनकी अस्ति के अभाव में जिनेन्द्रमूर्ति के दर्शन प्रतिदिन करे। समझ में आया? भानसहित की बात है न यहाँ तो? स्वभाव के दृष्टि के भानसहित उसे ऐसा भाव प्रतिदिन आये बिना नहीं रहता। बैगार नहीं करता वह। धन्नालालजी!

'गुरुपास्तिः' निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा। सन्त, मुनि, निर्ग्रन्थ भावलिंगी हों, उनकी सेवा। संसार में बड़ों की सेवा करते हैं या नहीं? श्रावक भी सेवा (करता है)। उसके माता-पिता, परिवार (की सेवा करता है)। अतः यहाँ **'गुरुपास्तिः'** गुरु की सेवा करे। उनकी सेवा का अर्थ उनकी भक्ति करे, आहारदान दे, इत्यादि का विनय करे। ऐसा दिन का-प्रतिदिन का कर्तव्य यह है। समझ में आया? गुरु, निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा। जैसे बड़ों की करे तो यह उसे पंचम गुणस्थान में श्रावक को आये बिना नहीं रहता।

'स्वाध्यायः' बहियाँ प्रतिदिन खोजता है या नहीं? मनसुखभाई! इसलिए कहते

हैं कि यह बहियाँ खोजने का भाव जिसे अभी व्यापार का श्रावक के योग्य होता है न? तो उसे स्वाध्याय (का भाव आता है)। शास्त्र में क्या है, उसका स्वाध्याय प्रतिदिन करे। एक लाईन वाँच ली और दो लाईन वाँच ली और हो गया, स्वाध्याय कर लिया - ऐसा नहीं। तथा किसी दिन वाँचन किया और फिर सदा (छोड़ दे) ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : इतना वाँचता तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी क्या समझे एक लाईन, दो लाईन में? यहाँ बहुत आते हैं। स्वाध्याय करे एक लाईन, पृष्ठ लेकर ऊपर आवे। स्वाध्याय वह षट्कर्म करने का कहा न, फिर दो पृष्ठ पढ़े, आड़ा-टेढ़ा उठाकर ले। क्रमसर, नियमसर शास्त्र का स्वाध्याय करे। अपना अध्याय तो ज्ञानस्वरूप की बारम्बार चिन्तवना होती है। परन्तु उसके साथ वाँचना, शास्त्र का वाँचन करे, वाँचन ले, प्रश्न पूछे, धारण किये हुए की बारम्बार पर्यटना करे, विचारण करे और धर्मकथा करे तथा सुने। कहो, समझ में आया? सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? क्या लम्बा-लम्बा हुआ?

स्वाध्याय के पाँच प्रकार हैं। वाँचन, पूछना, पर्यटना, अनुप्रिया और धर्मकथा। पाँच प्रकार हैं। स्वाध्याय के पाँच प्रकार कहे। कहो, बहियों के नामा लड़के को बताता है या नहीं कि ऐसे लिखना, ऐसे करना। श्रावक, हों। तो कहते हैं कि उसे शास्त्र का स्वाध्याय, भगवान त्रिलोकनाथ ने कहे हुए, सर्वज्ञ ने कहे हुए, उसके अनुसार सन्तों ने कहे हुए, उनके कहे हुए शास्त्र का हमेशा स्वाध्याय करे कि जिससे उसके ज्ञान में यथार्थपना निर्मल बना रहे। कहो, समझ में आया? यहाँ तो स्वाध्याय कहा। है तो शुभभाव। परन्तु यहाँ अभी बात में कर्म है न? कार्य है न? परन्तु ऐसा भाव धर्मी को शास्त्रस्वाध्याय का आये बिना नहीं रहता। कितना? प्रतिदिन। एक दिन स्वाध्याय की और आठ दिन गप्प चल गया, ऐसा नहीं। धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वाँचन करना। वाँचन देना या वाँचन लेना। प्रश्न पूछना। धारण किया हो, उसकी पर्यटना—बारम्बार याद करना और विचारना—उसका दीर्घ

विचार करना और कथा कहना। यह स्वाध्याय के पाँच प्रकार हैं। सेठी! क्या हुआ? निश्चय की बात आती परन्तु यह व्यवहार उसके साथ ऐसा होता है। श्रावक को ऐसा व्यवहार साथ में होता है। कहो, समझ में आया? कहाँ गये जगजीवनभाई! आये नहीं लगते तुम्हारे। तबीयत ठीक नहीं होगी? वहाँ गये होंगे। कहो, समझ में आया? स्वाध्याय।

'संयम' हमेशा किंचित् परपदार्थ के प्रति इच्छा घटावे, इन्द्रिय दमन का कुछ करे, ऐसा संयम अथवा छह काय के जीव को अमुक प्रकार के प्राणी को नहीं मारना, ऐसा भाव उसे प्रतिदिन श्रावक को होता है। ताराचन्दजी! समझ में आया? और योग्यतानुसार तप। पश्चात् इसे डाला। **'संयमस्तपः'** इच्छा घटाना। थोड़ी-थोड़ी इच्छा घटना। अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश आदि। उसमें राग थोड़ा घटाना, इच्छा निरो—ऐसा तप भी श्रावक को पंचम गुणस्थान के योग्य ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

दान। प्रतिदिन दान करना। स्त्री, पुत्र के लिये प्रतिदिन कमा-कमाकर रखता है या नहीं? पैसा। ठीक! पैसा-पैसा डाले, उसकी बात कहाँ है? यथाशक्ति। सब जगह ऐसा आता है। अपने दान में आया था। दान के अधिकार में यथाशक्ति दे। समझ में आया? यह पैसे का ठीक याद किया इन्होंने।

मुमुक्षु : कम से कम दसवाँ भाग देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दसवाँ आता है। कम से कम कमाता है, उसका दसवाँ भाग तो दान में निकाले। कहो, समझ में आया? यथाशक्ति दूसरी गाथाएँ बहुत हैं अवश्य। यह तो बाद में आयेगी। दान अधिकार। कितने में आया? दान की ३२ (गाथा)। है न। ३२। देखो, शक्ति नहीं उसमें। ३२ न?

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव
तस्यापि संततमणुव्रतिना यथर्द्धि।

बस, यह। यथा दान शक्ति प्रमाणः। देखा! समझ में आया? १२५ पृष्ठ, ३२वीं गाथा। **'यथर्द्धि' अपने धन के अनुसार...** है? पाँच लाख कमाता हो और एक पैसा डाले वहाँ धर्मादा में हमेशा।

'यथर्द्धि' देखा! थोड़े में थोड़ा इसकी शक्ति प्रमाण। लाख पैदा करता हो और एक पाँच रुपये खर्च करे, वह यथार्थशक्ति प्रमाण नहीं है। शक्ति प्रमाण दान न करे तो उसे मायावी कहा है। धर्मी नाम धराता है न, और यथाशक्ति प्रमाण (इतने कम खर्च करता है)। पुत्र का विवाह हो, तब कैसे पचास हजार खर्च कर डालता है। खर्च करता है या नहीं? लड़की के विवाह में न हो तो भी उधार करके वह काम करता है? लड़की का विवाह हो तो फिर पचास हजार का खर्च करे तो उगाही, चन्दा-खरडा करता है? वहाँ घर में से निकालता है परन्तु सब अपने कारण से निकालता है या नहीं प्रत्येक? चन्दा करो चन्दा, भाई! अपने को लड़की की विवाह करना है।

इसी प्रकार दान के काम में धर्मी को लोभ घटाने का भाव हमेशा होता है। हमेशा दिन प्रतिदिन। जैसे पुत्र, कुटुम्ब, कमाने के लिये भाव (आता है), तो दान के प्रति भाव भी श्रावक को हमेशा होता है। कहो, समझ में आया? देखो! ऐसा कि इतना मिले तो करूँगा।.... नहीं मिल सकता। लिखा है इसमें, हों! ऐसा नहीं समझना कि मैं हजारपति होऊँगा, दान करूँगा। इन्होंने तो हजार का मुश्किल से लिखा। अभी तो लाख और करोड़ का कहाँ ठिकाना है? मनसुखभाई! हजारपति-हजारपति। अब हजार तो गये। एक हजार के तो... दिन-प्रतिदिन दस-दस हजार की तो अभी आमदनियाँ हैं। पाँच-पाँच हजार और दस-दस हजार और दो-दो हजार की आमदनी है। अब हजारपति तो क्या? उस समय के हिसाब से लिखते हैं। मैं हजारपति होऊँगा। हजारपति होऊँगा, हों! पति हजार का लाभवाला नहीं। तब दान दूँगा। अथवा मैं लखपति होऊँगा, तब दान दूँगा। **किन्तु जितना धन पास में होवे उसी के अनुसार ग्रास, दो ग्रास अवश्य दान देना चाहिए।** श्रावक को थोड़ा बहुत तो हमेशा दान देना चाहिए। कहो, समझ में आया?

यह छह कर्म। देखो! पाठ में है न **'षट्कर्माणि'।** यह षट्भाव हमेशा उसे होते हैं। अरे! दृष्टि, अनुभव कदाचित् सच्ची न हुई हो, तथापि उसे यह भाव गृहस्थाश्रम में उसकी योग्यता प्रमाण मन्दकषाय के लिये ऐसे भाव होते हैं। देवदर्शन, गुरुपूजा इत्यादि होते हैं। यह तो यहाँ सम्यग्दर्शनसहित की ही बात है। समझ में आया?

अब यह कहते हैं, सामायिक करे सामायिक। हमेशा सामायिक करे। कैसी सामायिक होती है?

गाथा ८

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्।।८।।

अर्थ : समस्त प्राणियों में संयमभाव रखना तथा संयमधारण करने में अच्छी भावना रखना और आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान का त्याग करना इसी का नाम सामायिकव्रत है ।।८ ।।

गाथा - ८ पर प्रवचन

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्।।८।।

अर्थ – सर्व प्राणियों में साम्यभाव रखे। सामायिक में सब प्राणियों (के प्रति समभाव रखे)। यह मेरा, यह तेरा, ऐसा ममता का विकल्प उस समय घटा दे। सामायिक के प्रकार चार हैं। एक न्याय से। एक सम्यग्दर्शन सामायिक, एक सम्यग्ज्ञान सामायिक, एकदेश सामायिक, एक सर्वविरति सामायिक। यह देशसामायिक की बात चलती है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन सामायिक। अपना आत्मा अकेला वीतराग ज्ञायक है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करना वह सम्यग्दर्शन सामायिक है। उस सम्यग्दर्शन की सामायिक बिना देशसामायिक और सर्वविरति की सामायिक नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया?

उसके साथ सम्यग्ज्ञान सामायिक। ज्ञान का वेदन सम्यक् का उग्ररूप से करे। ज्ञान का सम्यक् आचरण, वह एक सम्यग्ज्ञान की सामायिक है। ज्ञान की वीतरागी पर्याय। उस पूर्वक उसे देशसंयम की यह बात चलती है। देशसामायिक। एक अंश में भी राग घटाकर पंचम गुणस्थान के योग्य सर्व प्राणियों के प्रति समभाव रखना, वह यह देशसामायिक की बात है। मुनि को सर्वविरति की सामायिक (होती है)। मुनि को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित सर्व रागादि का त्याग समता-समता वीतराग। वीतरागी मुनि होते हैं। कहो, समझ में आया? कहो, वे कहते हैं कि मुनि को फिर अकेला शुद्धोपयोग

ही होता है। समझ में आता है न? परन्तु यह होता है, शुभपरिणति में भी मुनिपना होता है।

एक तो इस लिंग में कहा नहीं? १७२ गाथा में। आत्मा तो शुद्ध उपयोगी है, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? शुद्ध उपयोगी को आत्मा कहते हैं। शुभाशुभ परिणाम हैं, वे होते हैं। यहाँ कहते हैं न शुभभाव आता है। परन्तु वह आत्मा नहीं है। व्यवहार बीच में आता है, ऐसा भाव श्रावक को होता है। आत्मा... शुद्ध उपयोग अथवा शुद्ध स्वरूप उसका शाश्वत् त्रिकाल। उसकी अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम उसने आत्मा जाना और माना तथा अनुभव किया कहलाता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जब हो। चाहे जब हो। उसमें क्या है? कहो।

सामायिक संयम धारण करने में अच्छी भावना... शुभभावना है न। इन्द्रियों का दमन। उस समय इन्द्रिय की चपलता को रोके। शास्त्र की भाषा व्यवहार के चरणानुयोग में आवे। उसको इसे समझना चाहिए। भाव आता है कि यह नहीं। उस समय सामायिक में इन्द्रिय दमन होता है। उसे संयम की शुभभावना होती है। शुभ, हों! वह व्यवहार सामायिक है। शुद्ध-अन्दर में स्थित हो, वह निश्चय सामायिक है। निश्चय सामायिक की भूमिका में विकल्प वर्तता हो, पंच परमेष्ठी का स्मरण आदि शुभभाव है। ऐसी भाव की सामायिक उसे व्यवहार होता है।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करके,... संसारी आर्तध्यान-इष्ट का वियोग, अनिष्ट का संयोग, शरीर में वेदना आदि हो, उसका त्याग सामायिक में होता है। शरीर में रोग होवे तो उसकी चिन्ता नहीं होती। उस समय कुछ सुने कि अरे! यह लक्ष्मी गयी।... उसके परिणाम में रौद्रध्यान नहीं होता। सामायिक में समता होती है। मेरा कुछ नहीं है। भवितव्य लिया है न? होनेवाला तो होता है। उसमें मेरा अधिकार क्या? स्वामी कार्तिकेय में आता है। उपबृहण में आता है। कहो, समझ में आया? वहाँ भवितव्य लिया है।

मुमुक्षु : भवितव्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो भवितव्य अर्थात् जैसा होता है, वैसा होता है। मैं

तो उसका जाननेवाला / ज्ञाता-दृष्टा हूँ, तब उसकी सामायिक यथावत् रहती है। वरना रहती नहीं। कहो, ...चन्दजी! आहाहा! ठीक!

मुमुक्षु : पैसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा, नुकसान कहाँ गया है? किसे नुकसान गया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मी को नुकसान ही नहीं है। कहो, पचास हजार का नुकसान हुआ, लाख का नुकसान हुआ तो सामायिक में समता रख सकता है या नहीं? ऐसा कहते हैं। नुकसान हुआ ही कहाँ है? वह तो जाने के काल में जाते हैं। भवितव्य ऐसा होवे तो ऐसा होता है। मुझे क्या है? धर्मी समता-समता (रखता है)। उद्वेग नहीं, आर्तध्यान नहीं, रौद्रध्यान नहीं। हिंसानुबन्धी परिणाम, चौर्यानुबन्धी इत्यादि-इत्यादि (नहीं करता)। अपने में अन्दर में समता का प्रयोग करे। मरण के समय मैं कितनी समता रख सकूँगा? वह प्रतिदिन समता का प्रयोग है। प्रौषध है, वह १५-१५ दिन का प्रयोग है। मैं बाहर कितनी समता रखूँगा? प्रतिकूलता होने पर भी समता का प्रयोग अन्तर अजमाईश कितनी कर सकता हूँ, इस प्रकार हमेशा वह सामायिक में आत्मा की समता कितनी बनाये रखे, उसका प्रयोग करे। समझ में आया? दुनिया लुटती जाती हो, उस समय सामायिक में बैठा (होवे तो) विकल्प नहीं, विचार नहीं। मेरा कुछ नहीं, मेरा जाता नहीं। होवे, वह मेरा मेरे पास है। बाहर है, वह मेरा नहीं है। मेरा कुछ लुटता नहीं है। मेरा कोई ले नहीं जाता। कहो, भीखाभाई! यह सच्ची सामायिक की बात चलती है, हों! ऐसे तो खोटी कितनी की होगी। ....भाई!

'परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्' कहो, समझ में आया? **इसी का नाम सामायिक व्रत है।** ९वीं।

गाथा ९

सामायिकं न जायेत व्यसनम्लानचेतस:।
श्रावकेन तत: साक्षात्याज्यं व्यसनसप्तकम्।।९।।

अर्थ : जिन मनुष्यों का चित्त व्यसनों से मलिन हो रहा है उनके कदापि यह सामायिक व्रत नहीं हो सकता इसलिए सामायिक के आकांक्षी श्रावकों को सातों व्यसनों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए॥९॥

गाथा - ९ पर प्रवचन

सामायिकं न जायेत व्यसनम्लानचेतस:।
श्रावकेन तत: साक्षात्याज्यं व्यसनसप्तकम्।।९।।

अहो ! धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि श्रावक, **जिन मनुष्यों का चित्त व्यसनों से मलिन है।** उसे-श्रावक को सामायिक यथार्थ नहीं हो सकती। जिसका मन-चित्त व्यसनों में मलिन है, उसकी सामायिक शान्ति की हो नहीं सकती। **उनके कदापि सामायिक व्रत नहीं हो सकता।** कहो, समझ में आया ? व्यसनों का नाम बाद में कहेंगे। **'श्रावकेन तत: साक्षात्याज्यं'** साक्षात् का अर्थ किया है सर्वथा। साक्षात् अर्थात् सर्वथा। सात व्यसन का त्याग श्रावक को तो हमेशा होता है। श्रावक नाम धरावे (और) परस्त्री का लम्पटी हो, माँसादि खावे और श्रावक नाम धरावे, ऐसा नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया ? **'श्रावकेन तत:'** **'तत:'** अर्थात् इस कारण से। क्योंकि व्यसन मन मलिन रहा करता है। इस कारण से श्रावक को साक्षात्, साक्षात् अर्थात् सब सात व्यसन सर्वथा छोड़ देना चाहिए। **'सप्तकम्'** उनके नाम।

गाथा १०

द्युतमांससुररावेश्याखेटचौर्यपराङ्गना:।
महापापनि सप्तैव व्यसनानि त्यजेद् बुध:।।१०।।

अर्थ : जुआ, माँस, मद्य, वैश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री — ये सात व्यसन संसार में प्रबल पाप है, इसलिए विद्वानों को चाहिए कि वे इनका सर्वथा त्याग कर देवें॥१०॥

गाथा - १० पर प्रवचन

द्युतमांससुररावेश्याखेटचौर्यपराङ्गना:।
महापापनि सप्तैव व्यसनानि त्यजेद् बुध:।।१०।।

देखो! **'त्यजेद् बुध:' 'बुध:'** शब्द पड़ा है न? ज्ञानी को-आत्मा के स्वभाव के साधक को, जिसे आत्मा का शान्त अविकारी धर्म साधना है, ऐसे धर्मी को जुआ छोड़ देना चाहिए। कहो, समझ में आया? अभी तो बड़ा जुआ चलता है, बड़ा काला बाजार और... कितनी चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... लाख-दो लाख जायेंगे, पाँच लाख जायेंगे। क्या होगा? समझ में आया?

एक बार तो वहाँ मुम्बई हम बड़ा माल लेने गये थे। वहाँ एक जगह उतरे थे। कल कहे इसे तीन हजार मिले और आज स्त्री का घाघरा और अच्छी साड़ियाँ लेकर बेचने ले गये हैं। नुकसान हुआ था। जिसके घर में उतरे थे, वहाँ ही बात थी। यह तो ६६-६७ की बात है। संवत् १९६६-६७। कल बहुत पैसे पैदा किये थे। आज नुकसान हुआ। अच्छी साड़ियाँ और लाये होंगे दो-चार दिन पहले लाये होंगे, तो आज सब अच्छी साड़ियाँ (बेचने निकले)। साडला समझते हो? साड़ी-साड़ी। यहाँ तो गुजराती भाषा है न? साड़ी और अच्छे घाघरा बढ़िया-बढ़िया लाये होंगे, हजार-हजार, दो-दो हजार के। सब बेचने गया है। स्त्री से लेकर (बेचने गया) नुकसान हुआ था। यह चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... सट्टा, बड़ा सट्टा करे न? सट्टा करते हैं न? अभी तो बहुत

काला बाजार अभी चलता है। जुगता, जुगटूं, जुगटूं, जुआ। यहाँ हमारे जुगटूं कहते हैं। तुम्हारे जुआ (कहते हैं)। जुआ छोड़ देना। यह जुआ बड़ा व्यसन है। व्यसन का अर्थ ही पीड़ा होती है। समझ में आया? श्रावक को ऐसा व्यसन नहीं हो सकता।

माँस... व्यसन का अर्थ ही पीड़ा होता है। व्यसन का अर्थ ही पीड़ा होता है। जुआ का व्यसन अर्थात् पीड़ा। छोड़ दे। वह श्रावक को नहीं हो सकता। श्रावक को माँस नहीं होता। कहो, यह प्रश्न एक बार ७७ में उठा था, संवत् १९७७। समकिती को माँस होता है। समझ में आता है न? यह श्रेणिक राजा को ऐसा अमुक-अमुक था। अरे! माँस नहीं होता है। श्रावक हुआ हो, उसे माँस का खुराक नहीं होती। जिसमें माँस का अतिचार लगता हो, वह चीज़ भी छोड़ दे। समझ में आया? जिसमें जीवांत पड़ी हो, यह लट पड़े, बहुत दिनों का आटा, अचार, सब सड़ा हुआ हो न बहुत, उसमें लटें होती हैं। ऐसा आहार श्रावक को नहीं हो सकता। सम्यक् भानसहित के आचरण में... माँस का त्याग होता है।

उसे **मद्य**... मद्य—शराब। शराब का त्याग होता है। बोतल-बोतल पीते हैं न? अभी तो कितने ही बनिये पीते हैं आजकल। अच्छी महँगी शराब पीते हैं। ७५-७५ रुपये की पाव सेर होती है। ७५ रुपये का नो टांक आता है। बड़ा महँगा शराब। अधिक नशा रहे। आता है या नहीं? हीराभाई! ऐसा सुना है। अपने कहाँ देखा है।

मुमुक्षु : .... बहुत ऊँचे विचार आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में विचार आते नहीं। वह एक बार रामजीभाई कहते थे। मूर्ख है। ऐसा कहे कि शराब पीवे तो ऊँचे-ऊँचे विचार आवे। मूढ़ जैसा हो जाए। कुछ (भान) रहे नहीं, ऐसा। ....

मद्य... शराब नहीं होती। समझ में आया? शराब का त्याग होता है। वास्तव में तो मधु का भी त्याग होता है। मधु का महान पाप है। एक मधु की बिन्दु में सात गाँव मारे, इतना पाप शास्त्र में गिना है। समझ में आया? मधु (शहद) भी नहीं हो सकता। महापाप है। गिनती नहीं होती। मधु को क्या कहा जाता है यह? इत्र-इत्र। इत्र—सड़ा अकेला सड़ा। लटें पड़ गयी हों। करते हैं न एक वस्त्र में डालकर। ताराचन्दजी! ऐसा

भोग उसका श्रावक को हो नहीं सकता। यह तो बापू! उसे धर्म के मार्ग में बैठना है। धर्म की कोई... नहीं हो सकते। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। इत्र का महापाप है। एक बिन्दु में सात गाँव मारे उतना पाप है। इत्र में।

मुमुक्षु : मधु कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मधु में और इत्र में। मैं तो कहता हूँ। मधु में भी सही और इत्र में भी इतना पाप है। भले यह लिखा नहीं है, परन्तु इत्र में महापाप है। बहुत सड़ा। सड़ा वह सड़ा अकेला। सडो समझते हो? सड़ा हुआ। सड़े हुए को तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? बहुत सड़ा हुआ। लटें, जीवांत ही हों अन्दर। ऐसा तो श्रावक को हो नहीं सकता। समझ में आया?

वैश्या... वैश्या नहीं होती। धर्मी जीव को... अमुक बहुत तक रखे, उसकी दिक्कत नहीं, ऐसा सब अर्थ में आता है। अरे! चल। ऐसा वह... हमारे बहुत था। उसमें भी आता है। ऐसा नहीं होता। श्रावक को पर वैश्या, उसका आचरण, संग नहीं हो सकता। **शिकार...** समकिती शिकार करते थे पहले, ऐसी उल्टी-सीधी गप्प मारते हैं। राजा थे, शिकार करते और ऐसा करते और वैसा करते। अरे! धर्मी को शिकार नहीं होता। वह हिरण आदि के प्राण ले, ऐसा शिकार समकिती को नहीं होता।

बड़ी **चोरी...** डाका डालना और यह सब करना, देखो न! अन्दर में उथल-पुथल कर डालना। धन्धा कुछ किया और सवाया बताते हैं कुछ। समझ में आया? ऐसा धन्धा श्रावक को होता नहीं। बखार बदल डाले। शाम को बढ़िया गेहूँ बतावे, रात्रि में बदल डाले। सवेरे देखो तो आहाहा! अरे... परन्तु यह! यह बताये थे। अरे! परन्तु क्या यह सब चीज़! क्या बोले? उस बनिये को, श्रावक को ऐसा नहीं हो सकता। उसके आचरण में सुधार न हो तो श्रद्धा-ज्ञान भी सच्चे नहीं हैं। समझ में आया? उसकी भूमिका प्रमाण का आचरण न हो और उल्टे परिणाम हो जाएँ तो उसकी श्रद्धा भी पलट जाएगी। चोरी नहीं होती। **परस्त्री...** नहीं होती। श्रावक को परस्त्री का त्याग होता है। समझ में आया?

ये सात व्यसन संसार में महान पाप हैं। है न पाठ में ? महापाप, प्रबल पाप है। महापाप। ऐसे पाप के परिणाम श्रावक को नहीं होते। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, वहाँ भूमिका में पंचम गुणस्थान के योग्य ऐसे पाप के परिणाम उसे नहीं हो सकते। समझ में आया ? उसका नीति का जीवन भी बहुत अलग प्रकार का होता है।

मुमुक्षु : पंचम गुणस्थान की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम गुणस्थान की बात चलती है।

मुमुक्षु : चौथे की नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में नहीं। अभी पंचम चलता है। चौथे (वाले) को भी माँस-शराब नहीं होता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सब ऐसा ही होता है। चौथे में क्या है ? यह तो पंचम गुणस्थान की बात चलती है। परन्तु ठीक पूछा। चौथे में तो दिक्कत नहीं है न ! उसे नहीं होता, शिकार-बिकार नहीं होता, माँस नहीं होता, शराब नहीं होती, मद्य नहीं होता। ऐसा उसे नहीं हो सकता। अब देखो ! आचरण अपने तीन वर्ष पहले लिया था। (संवत्) २०१७ के वर्ष। समझ में आया ? श्रावक को, सच्चे श्रावक को इस प्रकार से सात व्यसन का त्याग ही होता है। समझ में आया ?

इसलिए विद्वानों को... है न ? **'बुधः'** शब्द। ज्ञानी को-धर्मात्मा को सच्ची समझ (जिसे हुई है ऐसे) विवेकीजन को ऐसे सात व्यसन नहीं होते। देखो ! **'बुधः'** है। **इनका सर्वथा त्याग कर दे।** लो, समझ में आया ? सर्वथा त्याग करना। दस गाथा हुई। ११वीं।

गाथा ११

धर्मार्थिनो ऽपि लोकस्य चेस्ति व्यसनाश्रय:।
जायते न ततः सापि धर्मान्वेषणयोग्यता।।११।।

अर्थ : जो पुरुष धर्म की अभिलाषा करनेवाला है, यदि उसके भी ये व्यसन होवे तो उस पुरुष में धर्म धारण करने की योग्यता कदापि नहीं हो सकती अर्थात् वह धर्म की परीक्षा करने का पात्र ही नहीं हो सकता इसलिए धर्मार्थी पुरुषों को अवश्य ही व्यसनों का त्याग कर देना चाहिए॥११॥

गाथा - ११ पर प्रवचन

धर्मार्थिनो ऽपि लोकस्य चेस्ति व्यसनाश्रय:।
जायते न ततः सापि धर्मान्वेषणयोग्यता।।११।।

जो कोई पुरुष धर्म की अभिलाषा करनेवाला है। **यदि उसको यह व्यसन होवे तो इस पुरुष को धर्म-ध्यान करने की योग्यता कदापि नहीं हो सकती। 'धर्मान्वेषणयोग्यता'** धर्म को शोधने की कि यह धर्म है। वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान क्या है, उसे शोधने की योग्यता उसके नहीं हो सकती। सात व्यसन के महापाप में उसकी बुद्धि वहाँ रुकी हो, सत् को शोधने के लिये उसका मस्तिष्क काम करता ही नहीं। देखा! **'धर्मान्वेषणयोग्यता'** धर्म की अन्वेषणता—शोधना—परीक्षा करना। समझ में आया? धर्म के पैसे माँस खाये, शराब पीवे, शिकार करे, परस्त्री (भोगे) और फिर धर्म की परीक्षा करने बैठे। यह धर्म उसे नहीं हो सकता। तीव्र अनन्तानुबन्धी के राग की अन्दर में जिसे ऐसी परिणति हो, वह धर्म की शोध और विचारना और यथार्थ निर्णय नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया? यह नहीं कहते? लो, यह भगवान के शास्त्र नहीं हैं। अमुक ऐसे हों, अमुक ऐसा हो। और एक व्यक्ति आया था, यह क्या है कहा? परीक्षा किसने की यह? तुम भव्य हो या अभव्य? ऐसा मैंने पूछा। वह ऐसा कहे, यह वाणी ऐसी नहीं। कौन हो तुम? भव्य हो या अभव्य हो?

मुमुक्षु : गुरुवाणी है। भगवान की वाणी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा बोला था। समझे न? तीन साधु नाम धराकर आये फिर (कहे), यह वाणी ऐसी नहीं होती। यह समयसार के सामने देखकर। यह वाणी वीतराग की नहीं है। गुरु की वाणी, ऐसा (नहीं होता)। तुम कौन हो? कहा, भव्य हो या अभव्य? यह खबर नहीं पड़ती। भव्य और अभव्य की खबर नहीं पड़ती और वीतराग की परीक्षा करने निकला? ताराचन्दजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, फिर शर्मा गया, हों! पकड़ा... फिर बदलने लगा। यह तो आ गयी कहा अब। अभी भव्य-अभव्य के निर्णय का ठिकाना नहीं। अभव्य को कभी सम्यग्दर्शन नहीं होगा, भव का अभाव नहीं होगा। ऐसी तो शंका। उसे भव के अभाववाले वीतराग और उनकी वाणी की परीक्षा करना, (यह नहीं हो सकता)। धन्नालालजी! जिसकी वाणी में भव का अभाव, जिसके भाव में भव का अभाव-ऐसी वीतरागी वाणी कैसी होती है, वह भव्य का-अभव्य का अभी निर्णय का ठिकाना नहीं, शंका (रहती हो कि) अभव्य हैं या भव्य, यह अपने को खबर नहीं पड़ती। अभव्य तो अनन्त पुद्गल परावर्तन चलते हैं, उसमें अनन्त काल में भटकता है। अनन्त काल में भटकता है, ऐसी अभी तो तुमको शंका है। यह होगा या नहीं? यह भवरहित की वीतराग वाणी जिसमें भव नहीं, उस वाणी की परीक्षा अभव्य की शंका हो, वह कर सकेगा? समझ में आया? फिर शर्मा गया।

पश्चात् दूसरी जगह वापस मिले थे दूसरे गाँव में। अपने चर्चा की थी उनके साथ में। दूसरे जाकर कहे। उनके साथ रहने दो। उन्होंने तो मुझे पकड़ा था न! उनके साथ चर्चा करनेयोग्य नहीं है। ऐसा कहे। अभी तुमको भव्य-अभव्य का निर्णय नहीं होता और इस निर्णय के बिना वीतरागी वाणी, किस सन्त की और किन भगवान की कहाँ वाणी है, इसकी परीक्षा करने निकले, वह परीक्षा नहीं हो सकती।

यहाँ कहते हैं कि धर्म की अन्वेषण की योग्यता सात व्यसन के सेवन करनेवाले को नहीं हो सकती। समझ में आया? तीव्र क्रोध और माँस, लोभ की तीव्रता में जहाँ

गति है, उसे अत्यन्त वीतराग वाणी या वीतरागी धर्म... आहाहा! एक विकल्प का राग भी जहाँ आदरणीय नहीं। होता है, ऐसा होने पर भी आदरणीय नहीं। ऐसी दृष्टि और ऐसी वाणी की परीक्षा सात व्यसन के सेवन करनेवाले को नहीं हो सकती। समझ में आया? कितने ही यह कहते हैं कि क्रमबद्ध में आनेवाला हो, वह आता है। भोग का होवे तो आवे। अरे! मर जाएगा, सुन न! ऐसा तुझे किसने कहा? उसके क्रम में शरीर में ऐसा कि परस्त्री का भोग आनेवाला हो तो आवे, अमुक होवे तो आवे, माँस खाने का हो तो आवे। उसमें अपने को कहाँ व्यवधान है? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। लो! साधु नाम धरानेवाला। यहाँ आया? निश्चयवाले को फिर क्या है? माँस हो, शराब हो, इसे उसमें पाप लगता ही कहाँ है? आहाहा! पढ़ा हुआ यहाँ का मोक्षमार्गप्रकाशक। पश्चात् अभिमान चढ़ा। जिसे निश्चय हो गया, उसे माँस हो, परस्त्री हो, शराब हो, उसे क्या है? मर जाएगा, कहा। ऐसे शराब और माँस के भाव नहीं होते।

जिसे धर्म का निर्णय और सच्चा निश्चय हुआ है, उसे ऐसे माँस और शराब, परस्त्री का लम्पटपना और शिकार आदि, वैश्या के ऐसे भाव नहीं हो सकते। लो, निश्चय-निश्चय। क्या निश्चय? निश्चय में फिर क्या बाधक है? ऐसा कहे। परद्रव्य तो कुछ बाधक नहीं है। अरे! सुन न! कौन कहता है परद्रव्य बाधक है, परन्तु ऐसे भाव करता है परस्त्री के, वैश्या के, लम्पटपने के पूरे और वह धर्म की परीक्षा तथा योग्यता प्रगट नहीं कर सकता। आचार्य इनकार करते हैं। ताराचन्दजी!

जो पुरुष धर्म की अभिलाषा करनेवाला है, अगर उसके भी यह व्यसन होवे... आश्रय है न? **'चेस्ति व्यसनाश्रयः'** ऐसा। वह व्यसन का आश्रय करता है अर्थात् व्यसन सेवन करता है। **तो उस पुरुष में धर्म धारण करने की योग्यता कदापि नहीं हो सकती। वह धर्म की परीक्षा करने का पात्र ही नहीं हो सकता।** कहो, समझ में आया? जिसकी आँख में-ज्ञान में तीव्रता ऐसे पाप पड़े हैं, वह धर्म की परीक्षा करने के योग्य नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

इसलिए धर्मार्थी पुरुषों को अवश्य व्यसनों का त्याग कर देना चाहिए। देखो! इस भूमिका प्रमाण उसका ऐसा भाव होता ही नहीं। बहुत से आक्षेप करते हैं, लो। तुम्हारे लोग ऐसा बोलते हैं निश्चय और क्रमबद्धवाले। हमारे पाप-बाप पश्चात्

क्या है। क्रम में ऐसा होनेवाला था। अरे! यह माननेवाला क्रम को समझता नहीं। मूढ़। जो क्रमबद्ध मानता है, उसे तो आत्मा का अकर्तापना प्रसिद्ध होता है। समझ में आया? क्रमबद्ध जाने, उसे तो अकर्तापना प्रसिद्ध होता है। अकर्तापना प्रसिद्ध हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। उसे ऐसे तीव्र परिणाम नहीं हो सकते। वह तो शरीर की क्रिया है, अमुक है। शरीर की क्रिया कौन इनकार करता है? परन्तु तेरे भाव किसके हैं यह? समझ में आया? परस्त्री का सेवन, वैश्या का सेवन, माँस के खाने के भाव, भाव किसके हैं? भाव तेरे हैं या नहीं? ऐसे भाव जहाँ हों, वहाँ धर्म की परीक्षा करनेयोग्य वह है नहीं। यह क्रमबद्ध और अकर्तापना उसे बिल्कुल समझ में नहीं आता। समझ में आया?

एक लड़का एक व्यक्ति को ऐसे मारता था। वह कहे, मारने की क्रिया जड़ की है। मैं कहाँ करता हूँ? यह दुरुपयोग। ठीक! अरे! भाई! यह तू क्या करता है? तेरी दृष्टि दूसरे को मारने का भाव है, क्रिया तो जड़ की है। वह तो जड़ मारता है तुझे। मैं कहाँ मारता हूँ? आत्मा (नहीं मारता), महाराज इनकार करते थे। भाई! जड़ की क्रिया जड़ में और चैतन्य की चैतन्य में, (ऐसा निर्णय होता है), उसकी तो अनन्तानुबन्धी की कषाय नाश हो जाती है। दोनों की क्रिया भिन्न है, मेरे कारण से नहीं। अनन्त परमाणु उनके कारण से परिणमते हैं, मेरे कारण से नहीं। आहाहा! वहाँ पर का अभिमान कर्तापने का उड़कर अनन्तानुबन्धी का नाश होता है, वहाँ ऐसे परिणाम नहीं हो सकते। कहो, समझ में आया इसमें? **व्यसनों का त्याग कर देना चाहिए।** लो, ११ हुई। १२वीं।

गाथा १२

सप्तैव नरकाणि स्युस्तैरेकैकं निरूपितम्।
आकर्षयन्नृणामेतद्व्यसनं स्वसमृद्धये।।१२।।

अर्थ : आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार व्यसन सात हैं; उसी प्रकार नरक भी सात ही हैं इसलिए ऐसा मालूम होता है कि उन नरकों ने अपनी-अपनी वृद्धि के लिये मनुष्यों को खींचकर नरक में ले जाने के लिए एक-एक व्यसन को नियत किया है॥१२॥

गाथा - १२ पर प्रवचन

सप्तैव नरकाणि स्युस्तैरेकैकं निरूपितम्।
आकर्षयन्नृणामेतद्व्यसनं स्वसमृद्धये।।१२।।

आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार व्यसन सात हैं। सात व्यसन। **वैसे नरक भी सात हैं।** नीचे सात नरक हैं। नीचे सात नरक, पाताल में नीचे सात नरक हैं। **इसलिए ऐसा मालूम होता है...** देखो! ऐसा अनुमान हमें होता है—ऐसा आचार्य कहते हैं। **कि उन नरकों ने अपनी-अपनी वृद्धि के लिये... 'स्वसमृद्धये।'** सात नरक की समृद्धि (के लिये) लोग इकट्ठे हों, मरकर यहाँ आवे। व्यसन के सेवन करनेवाले यहाँ आवे, इसलिए सात नरक यहाँ किये हैं। भीखाभाई! सात नरक हैं अनादि के, हों! कल्पना नहीं है।

नीचे नरक है। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ। जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति में यह राजा, महाराजा साधारण पाप करे तो वहाँ जानेवाले हैं। बड़े पाप करे तो एक सागर की स्थिति पहले नरक में है। एक सागरोपम। असंख्यात अरब वर्ष का एक पल्योपम, उसके दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। ऐसी एक सागर की स्थिति पहले नरक में। वस्तु है, हों! उग्र परिणाम तीव्र पाप के किये हों, उसे फल भोगने का स्थान यहाँ नहीं है। उसका फल भोगने का स्थान वहाँ नरक योनि में है। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं, मैं तो ऐसा जानता हूँ **कि नरकों ने अपनी-अपनी वृद्धि के लिये मनुष्यों का स्थितकर...** आकर्षण है न? **'न्रृणामेतद्व' नरक में ले जाने के लिये एक-एक व्यसन को नियत किया है।** सात नरक सात व्यसन के लिये हैं। सात के सात मिलान खाता है न सात का? समझ में आया? महान पाप करे, वह तो नरक मे ही जाता है। महाआरम्भ, महापरिग्रह। मछलियाँ खाये, शराब पीवे... आहाहा! मुम्बई में तो देखो न, समुद्र में दिशा को जाते हुए... क्या कहलाता है उसे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सामने तो बड़ी मछलियाँ इतनी-इतनी मारकर। मैंने कहा, लौकी जैसा लगता है, अन्धकार था। तब कहे, मछलियाँ गन्ध मारती हैं। कितने ढ़ेर सामने। आहाहा! बेचारा साधारण मनुष्य मरकर नरक जाएगा। उसे कोई बँगला नहीं होता उसके घर में। दो-चार-पाँच कमाते हों और इतना तो खर्च हो। पाँच-पाँच तो ड़ेढ़ सौ दौ सौ रुपये कमातें और घर में आठ मनुष्य हों। अभी की महँगाई। वह वस्त्र भी अच्छा नहीं हो। मरकर ऐसे व्यर्थ के थोड़े काल के लिये मरकर नरक पायेगा।

ऐसा कहते हैं कि कोई भी मनुष्य सात व्यसन सेवन करे तो कुदरत ने जो सात नरक किये हैं तो इन सात व्यसन के फल सात नरक में जाने के लिये रखे हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! देखो! इसलिए श्रावक को सात व्यसन नहीं होते, ऐसा सिद्ध करना है। उसका जीवन गृहस्थाश्रम भले हो, अरबोंपति हो, परन्तु उसे ऐसे व्यसन नहीं हो सकते। पुण्य के प्रमाण में संयोग हो, सम्पत्ति हो परन्तु उसके भाव श्रावक को ऐसे तीव्र नहीं हो सकते। कहो, समझ में आया?

गाथा १३

धर्मशत्रुविनाशार्थं पापाख्यकुपतेरिह।
सप्ताङ्गं बलवद्राज्यं सप्तभिर्व्यसनैः कृतम्।।१३।।

अर्थ : और भी आचार्य कहते हैं कि धर्मरूपी वैरी के नाश के लिए पाप नामक दुष्ट राजा का सात व्यसनों से रचा हुआ यह सात हैं अंग जिसके, ऐसा बलवान राज्य है।।१३।।

गाथा - १३ पर प्रवचन

धर्मशत्रुविनाशार्थं पापाख्यकुपतेरिह।
सप्ताङ्गं बलवद्राज्यं सप्तभिर्व्यसनैः कृतम्।।१३।।

और भी आचार्य कहते हैं, धर्मरूपी वैरी के नाश के लिये...

मुमुक्षु : पाप का वैरी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह पाप का वैरी है। **धर्मरूपी शत्रु को जीतता है।** समझ में आया?

जैसे राजा सप्तांग सेना से शत्रु को जीतता है, वैसे धर्मरूपी शत्रु को जीतता है। कौन? पाप। पाप है, वह धर्म का शत्रु है न? **जैसे धर्मरूपी वैरी के नाश के लिये पाप नामक दुष्ट राजा...** यह पाप नाम का दुष्ट राजा। यह पाप धर्म का शत्रु है। उस धर्म को जीतने के लिये पाप है। **दुष्ट राजा का सात व्यसनों से रचा हुआ यह सात अंग है जिसके।** है न **'सप्ताङ्गं'।** राजा के पास सात अंग होते हैं। दूसरे शत्रु को जीतने के लिये राजा के पास सात अंग होते हैं। इसके बिना दूसरे वैरी को, शत्रु को नहीं जीत सकता। राजा स्वयं है, दूसरा मन्त्री साथ में होता है। उसमें है, भाई! उस शब्द में है। उसमें है, उसमें होगा। सात नाम हैं। तेरहवीं गाथा में नाम हैं।

एक राजा स्वयं हो। शत्रु को जीतने के लिये जाता स्वयं भी साथ हो, मन्त्री हो— दीवान। विचारना करने के लिये कि क्या करना इस शत्रु का। मन्त्री होता है। तीसरा मित्र होता है। उसके अच्छे मित्र की क्या करने अपने को शत्रु को जीतने के लिये। खजाना होता है। लश्कर को निभाने के लिये पैसा न हो तो किस प्रकार से शत्रु को जीते। समझ में आया? राजा के पास सात अंग शत्रु को जीतने के होते हैं। इसी प्रकार पाप के पास सात व्यसन, वे धर्म के शत्रु हैं। सात व्यसन धर्म को जीतते हैं। ताराचन्दजी! आहाहा! समझ में आया?

खजाना। खजाना न हो तो क्या करे? नहीं आता था उसमें? चित्तौड़ का आता है न कहीं? कौन भामाशाह। खजाना नहीं होता। भामाशाह (पास) जाकर (कहते हैं), अन्नदाता! इतने पैसे, इतने रुपये हैं। जाते हैं घोड़े से, ऐसे देखते हैं। ऐ! भामाशाह आता है। खड़े रहे... खड़े रहे... राजा। स्वयं चल निकला देश में से कि इस देश में हम नहीं रह सकेंगे। पैसा नहीं है। शत्रुओं का जोर बढ़ गया है। हमारे साधन-लश्कर का क्या? उसमें वह भामाशाह आता है। अन्नदाता पैसे आपके... बारह वर्ष तक सेना को निभाओ तो कम पड़े ऐसा नहीं है। राजा नीचे उतर गया, हों! एकदम। भामाशाह। अन्नदाता पैसे

देता हूँ। खजाना बारह वर्ष सेना को रखे तो कम पड़े ऐसा नहीं है। खजाने के बिना क्या करे? बड़ा शूरवीर हो। लो, समझ में आया?

इसी प्रकार **देश...** अपना देश चाहिए न कुछ रहने के लिये। रहने का स्थान अपने को देश न हो तो शत्रु को जीते किस प्रकार? और **दुर्ग...** किला... किला होता है। किला के बिना शत्रु को जीतना किस प्रकार? और सेना होती है। सप्त अंग हुए। **'सप्ताङ्गं बलवद्राज्यं'** राजा को सात अंग होवे तो अपने शत्रु को जीतकर स्वयं अपना रक्षण कर सके। इसी प्रकार पाप शत्रुओं के पास सात अंग व्यसन के हैं। पापरूपी राजा, उसके पास सात (व्यसन हैं)। उसके साथ, इस राजा के अंग, इसके पास सात व्यसन। पापरूपी राजा के पास सात व्यसन हैं कि धर्म को जीतकर धर्म की हार करा दे। जमुभाई! एक ओर सात व्यसन, एक ओर सात नरक, एक ओर राजा के सात अंग। राजा के सात अंग। इसलिए पाप के भाव के पास इन सात व्यसनों के अंग हैं। ये सच्चे आत्मधर्म को घात कर डालते हैं। कहो, समझ में आया?

धर्मरूपी वैरी के नाश के लिये पाप नामक दुष्ट राजा का सात व्यसनों से रचा हुआ यह पाप है। उस पापी ने सात व्यसन रखे हैं, कहते हैं। ऐसा बलवान राजा पाप का है। ऐसे भाव श्रावक को, धर्मी को नहीं हो सकते। समझ में आया? देखो! ऐसा आचरण ऐसा-ऐसा श्रावक को नहीं होता। यह कहते हैं न बहुत? यह युवक ऐसा खाते हैं, अमुक खाते हैं, अमुक खाते हैं। भाई! इसकी सच्ची श्रद्धा यदि धर्म की करे तो उस धर्म की सच्ची श्रद्धावाले को ऐसे भाव नहीं होते। उसे विश्वास नहीं है। आत्मा का, परलोक का, देव का, गुरु का, शास्त्र क्या है, इसका अन्तर में विश्वास नहीं है। जहाँ-तहाँ बेचारे युवक भटका करते हैं और फिर माँस खाये, शराब पीवे... कुछ नहीं। इसलिए उन्हें पहले धर्म की कीमत कराओ। समझ में आया? ऐसा चाहिए। धर्म की कीमत होने पर सहज में वे पाप के परिणाम घट जायेंगे। ऐसे सीधे व्यसन छोड़ो... छोड़ो तो उन्हें समझ में नहीं आयेगा (कि) यह क्या कहते हैं? वहाँ जाकर ऐसा कहेंगे, लो, छोड़ो। ....नहीं जाना। परन्तु उन्हें धर्म की समझ कराना चाहिए।

बापू! आत्मा में आनन्द है, भाई! अनन्त-अनन्त आनन्द भरा है। सर्वज्ञ का व्यापार महापूर्ण हो गया। उन्होंने कहा कि तुझे शान्ति चाहिए हो तो आत्मा में है। उस आत्मा

की शान्ति की जिसे महत्ता, श्रद्धा होती है, उसे ऐसे पाप के परिणाम सहज घट जाते हैं। ऐसे परिणाम उसे नहीं हो सकते। कहो, समझ में आया इसमें?

इस प्रकार राजा सप्तांग सेना से शत्रु का विजय करता है, उसी प्रकार पापरूपी राजा सप्त व्यसनों की सप्तांग सेना से धर्मरूपी शत्रु को जीतता है। इसलिए (जो) पुरुष धर्म की रक्षा करना चाहते हैं, उनको इन सात व्यसनों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अब छह आवश्यक के वर्णन का विस्तार कहते हैं। छह है न आवश्यक? आवश्यक क्या? अवश्य करनेयोग्य देव की पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान, इन छह का विस्तार अब करते हैं।

आचार्य छह आवश्यकों की महिमा का वर्णन करते हैं। ओहोहो! निश्चय आवश्यक का जहाँ वर्णन आवे, वहाँ तो शुभभाव भी आवश्यक नहीं है। वह तो पराधीन दशा है, परन्तु आये बिना (रहते नहीं)। भूमिका प्रमाण पाँचवें और छठवें गुणस्थानवाले को आये बिना रहते ही नहीं। नियमसार में कहते हैं? अशुभभाव तो आवश्यक है नहीं, परवशता है; परन्तु शुभभाव भी आवश्यक नहीं है। निश्चय आवश्यक नहीं है। आहाहा! सामायिक और चौबीसंथो, वन्दना और प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान, आते हैं न छह? सामायिक, चौबीसंथो, वन्दन, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग—यह छह आवश्यक शुभभाव के, नियमसार में कहते हैं, मोक्षमार्ग में इतना भी परवशपना है, हों! उसे वास्तविक आवश्यक नहीं हो सकते। निश्चय आवश्यक तो अवश्य अपने स्वभाव में आधीन हो जाए। पर के आधीन न हो, ऐसा आत्मा का स्वभाव। वह श्रद्धा, ज्ञान और लीनता, वह वास्तव में तो आत्मा का आवश्यक है। उसका भान होने पर भी समकिती, श्रावक को ऐसे छह आवश्यक शुभभाव आये बिना नहीं रहते। समझ में आया?

निश्चय की पद्धति की जो वस्तु हो, वह तो अकेले स्व आश्रय को आवश्यक कहती है। व्यवहार की पद्धति का कथन हो, वहाँ पर के आश्रय को भी व्यवहार से आवश्यक कहने में आता है। अवश्य इसे करना चाहिए। श्रावक को देव पूजा अवश्य करना चाहिए। यह उसका आवश्यक कर्म है। समझ में आया।

गाथा १४

प्रपश्यन्ति जिनं भक्त्या पूजयन्ति स्तुवन्ति ये।
ते च दृश्याश्च स्तुत्याश्च भुवनत्रये।।१४।।

अर्थ : जो भव्य जीव जिनेन्द्र भगवान को भक्तिपूर्वक देखते हैं तथा उनकी पूजा स्तुति करते हैं वे भव्यजीव तीनों लोक में दर्शनीय तथा पूजा के योग्य तथा स्तुति के योग्य होते हैं अर्थात् सर्व लोक उनको भक्ति से देखता है तथा उनकी पूजा स्तुति करता है॥१४॥

गाथा - १४ पर प्रवचन

प्रपश्यन्ति जिनं भक्त्या पूजयन्ति स्तुवन्ति ये।
ते च दृश्याश्च स्तुत्याश्च भुवनत्रये।।१४।।

लो! **जो भव्य जीव जिनेन्द्र भगवान को भक्तिपूर्वक देखते हैं...** भक्तिपूर्वक देखते हैं। ऐसे बेगारीपूर्वक नहीं। चलो, माँ-बाप ने कहा है, जाओ वहाँ, देवदर्शन कर आओ। जय महाराज! कर आये? कहे, हाँ। समझ में आया? अपनी दृष्टि निर्मल है इसलिए वीतराग के प्रति प्रतिमा, मूर्ति, मन्दिर का भक्ति का भाव हुए बिना रहता नहीं। उसे समझता है कि यह शुभभाव है, पुण्यभाव है, परन्तु स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता; इसलिए ऐसा भाव प्रतिदिन आवश्यकरूप से आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

उनकी पूजा, स्तुति करते हैं... भगवान की। **वह भव्यजीव तीनों लोक में दर्शनीय...** भगवान के दर्शन करनेवाला आत्मा के दर्शन की दृष्टि की भूमिकासहित, वह भविष्य में दुनिया उसके दर्शन करेगी, ऐसा होगा। ऐसा कहते हैं न? देखो न! **तीनों लोक में दर्शनीय...** वह परमात्मा होगा। व्यवहार से भी बात है न? विकल्प को व्यवहार गिनकर। निश्चय से होता है, उसमें निमित्त का आरोप करके उससे भी—भगवान के दर्शन से, दूसरों को दर्शन करनेयोग्य स्वयं हो जाएगा। विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)